राष्ट्रीय एकता

और

इस्लाम

डॉ. अब्दुल हक़ अंसारी

अनुवादक

एस. कौसर लईक़

दो-शब्द

कुछ धर्म-विरोधी तत्वों ने लोगों में यह भ्रम उत्पन्न कर दिया है कि धर्म राष्ट्रीय एकता एवं राष्ट्रीय सौहार्द के मार्ग में एक बहुत बड़ी रुकावट है, और विशेषकर इस्लाम धर्म। इस्लाम धर्म को पृथकतावादी धर्म और मुसलमानों को अन्य धर्मों के प्रति उदारहीन होने का कुप्रचार कर दिया गया है। यद्यपि इस दुष्प्रचार का यर्थाथ से कोई संबंध नहीं।

डॉ. अब्दुल हक़ अंसारी साहब, जो एक महान् विद्वान एवं चिंतक हैं, ने अपने इस संक्षिप्त लेख में उन स्वार्थी तत्वों और इस्लाम के विरुद्ध दुष्प्रचार करनेवालों की कुभावनाओं का बड़ी गहराई से विश्लेषण किया है और बताया है कि उनके पीछे कौन-से उत्प्रेरक क्रियाशील हैं और इसी के साथ बिन्दु में सिंधु समाए हुए इस लेख में इस्लामी शिक्षाओं के उद्धरण प्रस्तुत करते हुए स्पष्ट किया है कि इस्लाम राष्ट्र से प्रेम करने, अन्य धर्मों का सम्मान करने और किसी भी धर्म के इष्ट-पूज्यों एवं धामिक़ विभूतियों का सम्मान करने का आदेश देता है।

'सर्वधर्म एकम्' की तथाकथित भावना रखनेवालों की नीतियों में पाई जानेवाली त्रुटियों को भी विद्वान लेखक ने अपने इस लेख में स्पष्ट करने का सफल प्रयास किया है और राष्ट्रीय एकता एवं राष्ट्रीय सौहार्द एवं धार्मिक एकता एवं धार्मिक सौहार्द के मार्ग में वास्तविक रुकावट क्या हैं? – उनकी ओर स्पष्ट संकेत किया है और बहुत से ऐसे महत्वपूर्ण उपाय सुझाए हैं जो सौहार्द एवं एकता के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

योग्य लेखक ने उन लोगों की नीति पर भी वार्ता की है जो नारा तो 'सर्वधर्म एकम्' का लगाते हैं लेकिन राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय सौहार्द के नाम पर एक विशेष धर्म और विशेष संस्कृति को समस्त देश वासियों पर थोपने का कुप्रयास करते हैं।

यह लेख मूलतः उर्दू में लिखा गया था, जो एक विचारगोष्ठी (सेमीनार) में पढ़ा गया। तत्पश्चात् उस लेख को पुस्तिका का रूप देकर "क़ौमी यकजहती और इस्लाम" के नाम से प्रकाशित किया गया। यह उसी पुस्तिका व लेख का हिन्दी अनुवाद है जो आप के हाथों में है। अनुवाद में भाषाशैली अत्यंत सहज एवं सरल रखने का यथासंभव प्रयास किया गया है। साथ ही मूल लेख में जो विश्वास, प्रवाह एवं हृदयस्पर्श जिन शब्दों का प्रयोग हुआ है; अनुवाद में उस मौलिकता को शेष रखने का पूरा यत्न किया गया है।

हमारी ईश्वर से प्रार्थना है कि इस पुस्तिका को अपने लक्ष्य में सफल बनाए और यह हमारे प्यारे देश को एक नई दिशा दे सके।

– अनुवादक

विषय-सूची

1. दो शब्द	3
2. राष्ट्रीय एकता और इस्लाम	5
3. धर्मों के मध्य सहमति किन बातों में है ?	6
4. धर्मों के बीच मतभेद एवं उसका प्रकार	9
5. सर्वधर्म एकम् का दृष्टिकोण	13
6. धर्म और राष्ट्रीय एकता	16
7. धर्मवालों के बीच असहमति के कारण	18
8. इस्लाम और राष्ट्रीय एकता	21

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

"ईश्वर के नाम से जो अत्यन्त दयावान, बड़ा ही कृपाशील है।"

राष्ट्रीय एकता और इस्लाम

भाइयो !

मैं अपने लेख में पहले इस समस्या पर वार्ता करूँगा कि देश के विभिन्न धर्मों के बीच क्या चीज़ें उभयनिष्ठ हैं, उनमें सहमति और एक सूत्रता है तो किन बातों में और मतभेद है तो किन चीज़ों में। इसी के साथ मैं "सर्व धर्म एकम्" के कुछ दृष्टिकोणों की समीक्षा प्रस्तुत करूँगा, जो हमारे सेमीनार का विषय है।

इसके बाद मैं इस विषय पर वार्ता करूँगा कि धर्मों के मध्य वास्तव में जो चीज़ें उभयनिष्ठ हैं, वे उन धर्मों के माननेवालों को एक- दूसरे से किस प्रकार निकट ला सकती हैं और किस सीमा तक राष्ट्रीय एकता और शान्तिमय जीवन के उस उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक सिद्ध हो सकती हैं जो हम सबको प्रिय है। और अन्त में उस चीज़ का उल्लेख करूँगा कि इन उभयनिष्ठ बातों के बारे में इस्लाम क्या कहता है और उन मूल्यवान उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु इस्लाम क्या कुछ कर सकता है।

– डॉ अब्दुल हक़ अंसारी

धर्मों के मध्य सहमति किन बातों में है ?

यदि हम खुले हुए ज़ेहन से धर्मों का अध्ययन करें और व्यक्तिगत रुचियों से ऊपर उठकर केवल इस उद्देश्य से उनपर नज़र डालें कि उनके बीच क्या-क्या बातें उभयनिष्ठ हैं तो पहली चीज़ हमें यह नज़र आएगी कि हमारे सारे धर्म मानवीय जीवन की सामान्य एवं मौलिक मर्यादाओं पर सहमत हैं। उदाहरणतः सारे धर्म सच्चाई, न्याय, वचन का पालन करना और अमानतदारी को भला समझते हैं और झूठ, अत्याचार, वचनभंग करना और बेईमानी को बुरा कहते हैं। सहानुभूति (हमदर्दी), दया, सदाशयता और विशाल हृदयता का सभी धर्म सम्मान करते हैं और स्वार्थ लोलुपता, पाषाण हृदयता, कृपणता और संकीर्ण हृदयता को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। धैर्य और स्थिरता, आत्मनियंत्रण, नर्मी और सज्जनता सभी के निकट उत्कृष्ट गुण हैं। अधीरता, हृदय संकीर्णता, तुच्छ इच्छाओं की दासता, रुक्ष स्वभाव, और दुःशीलता सभी के यहाँ बुराइयाँ हैं। कर्तव्य को पहचानना, सतर्कता, परिश्रम और उत्तरदायित्व का एहसास सभी को प्रिय हैं और ख़ियानत, कामचोरी, काहिली व आलस्य और लापरवाही सभी के निकट निन्दनीय हैं।

इसी प्रकार सारे धर्म सामाजिक जीवन के निर्माण के लिए नियमबद्धता, अनुशासन, सहयोग, पारस्परिक सहयोग, प्रेम, शुभचिंतन और सामाजिक न्याय को अनिवार्य समझते हैं और गिरोहबंदी, फूट, अव्यवस्था अशुभचिंतन, अत्याचार, अन्याय और उपद्रव को घातक ठहराते हैं। चोरी, व्यभिचार, हत्या, डाका, धोखा, रिश्वतख़ोरी और ग़बन (घोटाला) सभी के निकट बड़े अपराध हैं। गाली-गलौच, उत्पीड़न, परोक्ष निन्दा, चुग़लख़ोरी, ईर्ष्या, मिथ्यारोपण और फ़साद फैलाना सभी के यहाँ सख़्त गुनाह और महापाप हैं। माता-पिता के साथ सद्व्यवहार, रिश्तेदारों की सहायता, पड़ोसियों के साथ उपकार व सदाचरण, दोस्तों के साथ साहचर्य, कमज़ोरों का समर्थन, अनाथों और विवश लोगों का

हाल-समाचार लेते रहना, रोगग्रस्त लोगों की सेवा और संकटग्रस्त लोगों की मदद को सभी भलाई के काम समझते हैं।

बिना अपवाद प्रत्येक धर्म का उद्देश्य ऐसे लोगों को पैदा करना है जो सत्यनिष्ठ, सदाचारी, नम्र स्वभाववाले और भलाई की बातें सोचनेवाले हों। जिनका बाह्य और अन्तर एक समान, जो अपने हक़ के प्रति संतुष्ट और दूसरों का हक़ देने में विशाल हृदय हों। जो स्वयं शांति से रहें और दूसरों को शांति से रहने दें। जिनके व्यक्तित्व से हर एक को भलाई की आशा हो और जिनसे किसी को बुराई की आशंका न हो।

मानवीय जीवन और समाज की ये सामान्य मर्यादाएँ किसी धर्म के साथ विशिष्ट नहीं हैं। प्रत्येक धर्म की संयुक्त पूँजी हैं और प्रत्येक धर्म इन के संबंध में एक विस्तृत एवं व्यापक दृष्टिकोण रखता है। कोई धर्म इन मूल्यों एवं मर्यादाओं के प्रति अपने और पराए का अन्तर उचित नहीं समझता। कोई भी धर्म यह नहीं सिखाता कि न्याय, शुभ-चिंतन, सहानुभूति और प्रेम केवल अपने सहधर्मियों के साथ ही अपनाओ और दूसरे धर्मवालों का बुरा चाहो और इनके साथ अत्याचार, निर्दयता और शत्रुता का व्यवहार करो। अपने समुदाय के लोगों की जान-माल और इज़्ज़त व आबरू की रक्षा करो और दूसरे गिरोहों का माल लूटो, उनकी जायदादों को हड़पो और उनके घरों को आग लगा दो। उनके युवकों और अबोध बालकों की हत्या करो और उनकी स्त्रियों का अपमान करो और उनकी इज़्ज़त लूटो।

अपनों और दूसरों के साथ व्यवहार में यदि किसी अर्थ में धर्मों ने अंतर किया है तो केवल इतना कि हम अपने धर्मवालों के साथ दूसरों की तुलना में अधिक अच्छा व्यवहार अपनाएँ, अधिक प्रेम, त्याग और क़ुरबानी के साथ पेश आएँ। किन्तु किसी धर्म ने इसकी कदापि अनुमति नहीं दी है कि हम अपनों के साथ सद-व्यवहार करने के लिए दूसरों का हक़ मारें, अपनों की ख़ुशी के लिए दूसरों का धन लूटें और अपनों की शक्ति एवं उन्नति के लिए दूसरों को कमज़ोर और अपमानित करें।

प्रत्येक धर्म की यह धारणा है कि इन सामान्य मानवीय मर्यादाओं में जो

भलाइयाँ हैं वे मानव की श्रेष्ठता एवं सज्जनता के आदर्श हैं और जो बुराइयाँ हैं वे मनुष्य के तिरस्कार और अधमता के प्रतीक हैं। मानव इन्हीं अच्छे कामों को करके महान बनता है और इन्हीं बुरे और घृणित कामों को करके अधम और तिरस्कृत होता है।

प्रत्येक धर्म की यह आस्था है कि इन अच्छे कामों को किए बिना और इन बुरे कामों से बचे बिना किसी मनुष्य को मुक्ति या निजात नहीं मिल सकती। मुक्ति और निजात की शर्तें और अनिवार्य अपेक्षाएँ क्या हैं ? इस संबंध में धर्मों के बीच मतभेद है, किन्तु इस बात पर सभी एकमत हैं कि इन बुराइयों से बचना और इन भले कामों को करना, जिनका उल्लेख हमने किया है, प्रत्येक मनुष्य की मुक्ति व निजात के लिए अनिवार्य एवं अपरिहार्य है।

फिर प्रत्येक धर्म की यह शिक्षा है कि ये भलाइयाँ निष्ठा और नेक नीयती के साथ की जाएँ और इन बुराइयों से सच्चे दिल से बचा जाए और तौबा की जाए। दिखावे की कोई भावना, लाभ की कोई आशा या हानि की कोई आशंका हमारे अच्छे कामों के उत्प्रेरक न हों, हम भले काम करें तो भलाई के लिए या केवल ईश्वर (अल्लाह) की प्रसन्नता और प्रेम के लिए और बुराई से बचें तो किसी दबाव या शक्ति के प्रभावाधीन नहीं, वरन् केवल बुराई समझकर या परमेश्वर की नाख़ुशी और नाराज़गी के विचार से बचें।

लोगों के आत्मविकास और समाज के निर्माण के संबंध में धर्मों के दृष्टिकोण भिन्न हैं। लेकिन इस प्रकरण में किसी धर्म का मतभेद नहीं है कि व्यक्ति के आत्मविकास का कोई प्रोग्राम या समाज के सुधार की कोई योजना इन सामान्य मानवीय मर्यादाओं की प्राप्ति के बिना भी सफल हो सकती है।

जप-तप और उपासना व भक्ति से क्या अभिप्रेत है ? इस संबंध में भी धर्मों के बीच मतभेद है। किन्तु इस बात पर सभी एकमत हैं कि इन कर्मों के और जो भी उद्देश्य हों मगर इनका एक बहुत बड़ा उद्देश्य यह अवश्य है कि मानव के मन-मस्तिष्क, अधिकार और सोच इस प्रकार प्रशिक्षित हो जाएँ कि मानवता की आम भालाइयाँ उसे प्रिय एवं मनमोहक लगने लगें और इन नेकियों को करने पर वह स्वतः मजबूर हो जाए और मानवता की आम बुराइयों के विरुद्ध उसके

अन्दर ऐसी तीव्र घृणा उत्पन्न हो जाए कि उनसे उसकी तबीअत आप से आप दूर रहने लगे। भलाई करके मनुष्य को प्रसन्नता की अनुभूति हो और यदि भूल से कोई बुराई हो जाए तो उसपर वह शर्मिन्दा एवं लज्जित हो।

धर्मों के बीच इस बात में भी किसी सीमा तक मतभेद है कि पूजा-पाठ, ज्ञान-ध्यान, तपस्या और साधना की अपेक्षा मानव के साथ सहानुभूति, प्रेम, उपकार और त्याग-पूर्ण व्यवहार का क्या महत्व है, लेकिन इस बात में किसी धर्म को मतभेद नहीं कि इन नैतिक गुणों में कोताही की क्षतिपूर्ति किसी और चीज़ से नहीं होती। पूजा-पाठ और नमाज़-रोज़ा की अधिकता, (धार्मिक) यात्राओं या ज़ियारतों, गंगा-स्नानों और हजों से न उन नेकियों एवं भलाइयों की कमी पूरी होती है और न भलाइयों के विपरीत बुराइयों का अभिषाप दूर होता है।

धर्मों के बीच मतभेद एवं उसका प्रकार

धर्मों में जो बातें उभयनिष्ठ हैं, वे यही आम मानवीय और नैतिक मर्यादाएँ हैं जिनका उल्लेख मैंने ऊपर किया। इनके अतिरिक्त जो चीज़ें उभयनिष्ठ हो सकती हैं वे औपचारिक (Formal) अधिक हैं, वास्तविक और सकारात्मक कम। मैं इस बात को कुछ स्पष्ट करते हुए बयान करूँगा।

प्रत्येक धर्म में यह एहसास समान रूप से पाया जाता है कि यह प्रकृति का कारख़ाना और यह मानवीय अस्तित्व केवल प्राकृतिक विज्ञान का विषय नहीं है। कुछ तथ्य और भी हैं जो इन विज्ञानों की पकड़ में नहीं आते। यह वर्तमान जगत् की व्यवस्था स्वयं में पर्याप्त नहीं है। इससे परे भी एक सच्चाई है। यह बात तो हर धर्म महसूस करता है किन्तु जहाँ यह प्रश्न उठता है कि वह पराप्राकृतिक सच्चाई क्या है? एक है या अनेक? वह किन गुणों से युक्त है? वर्तमान जगत् और मानव से उसका क्या संबंध है?– तो इन आधारभूत समस्याओं के संबंध में हर धर्म का मार्ग अलग हो जाता है।

इस्लाम की दृष्टि में यह पराप्राकृतिक तथ्य एक ऐसी हस्ती है जो चेतना, ज्ञान और सामर्थ्य, सत्ता एवं अधिकार और संकल्प की स्वामी है। वह एकाकी और अद्वितीय है। इस जगत् की रचना उसी ने की है, इसका नियंता भी

वही है और इसका प्रबंधक और शासक भी वही। मानव वास्तव में आत्मा और शरीर का एक अद्भुत योग है। अपने स्रष्टा की तरह उसे सीमित रूप में ज्ञान, सामर्थ्य और संकल्प-शक्ति प्राप्त है। किन्तु गुणों की इस एकरूपता के होते हुए भी वह स्रष्टा (ईश्वर) की संरचना और उसका दास ही है, उसके प्रभुत्व में उसका कोई हिस्सा नहीं। अपने अस्तित्व, अधिकार और कर्म में ईश्वर पर निर्भर और उसके आदेश का पाबंद है। उसका सर्वोच्च सौभाग्य अपने स्रष्टा एवं प्रभु के आज्ञानुपालन और प्रेम में निहित है। ईश्वर के संबंध में इस्लाम की यह धारणा विशुद्ध एकेश्वरवाद की धारणा है।

एकेश्वरवाद की यह धारणा यहूदी मत की भी धारणा है और यही धारणा आरंभ में ईसाई धर्म में भी विद्यमान थी। उस आरंभिक काल में हज़रत ईसा मसीह (अलैहि.) की हैसियत परमेश्वर के एक आज्ञापालक दास एवं बंदे और एक महान ईश-संदेशवाहक (पैग़म्बर) की थी। किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया, इस विशुद्ध एकेश्वरवाद का स्थान 'त्रियेक परमेश्वरवाद' (Trinity) की धारणा ने ले लिया।

ज़रतुश्त भी एकेश्वरवाद के ध्वजावाहक थे, किन्तु उनके पंथ में भी धीरे-धीरे बदलाव शुरू हुए और आज उनके अनुयायीगण भलाई-बुराई और प्रकाश-अंधेरे की दो स्थायी और समानांतर सत्ताओं पर विश्वास रखते हैं और ब्रह्माण्ड और मानवीय इतिहास को इन्हीं दोनों परस्पर संघर्षरत शक्तियों के संघर्ष का परिणाम ठहराते हैं।

जैन मत आत्मा को एक स्थायी अनादिकालिक और शाश्वत सत्ता स्वीकार करता है, जो अज्ञात रूप से 'अनात्म' से संलिप्त होकर जीवन के एक अन्तहीन क्रम में जकड़कर रह गई है। यह ब्रह्माण्ड और उसकी प्रत्येक चीज़ चाहे कितना ही जड़ीभूत और अविवेकी हो, आत्मा ही की विभिन्न पतन और उत्थान संबंधी स्थितियों का नाम है। यह आध्यात्मिक तथ्य एक नहीं है, बल्कि अनगिनत आत्माएँ हैं और उन असंख्य आत्माओं से उच्च कोई अन्य चीज़ नहीं है, जिसे हम ईश्वर या ख़ुदा कहें। सामान्यतः जिन गुणों और शक्तियों से ईश्वर को आभूषित किया जाता है, जैन मत उन्हें उन आत्माओं के साथ संबद्ध करता

है, जो "अनात्म" के पापों से सदैव के लिए मुक्ति पा चुकी हैं।

बुध मत में विभिन्न सम्प्रदाय हैं और सच्चाई के संबंध में उनकी धारणाएँ एक-दूसरे से भिन्न हैं। उनके सबसे बड़े सम्प्रदाय के निकट कोई सच्चाई पतनहीन नहीं है। मानवीय चेतना क्षणिक चेतनाओं के एक के बाद एक प्रकट होनेवाली विपदाओं का एक असीमित क्रम है। यदि सच्चाई कोई चीज़ है तो इस क्रम के अतिरिक्त कुछ नहीं। इसी क्रम का टूटना मानवीय प्रयत्नों का वह अंतिम लक्ष्य है, जिसे "निर्वाण" कहते हैं। कुछ सम्प्रदायों के विचार में निर्वाण बिलकुल नकारात्मक नहीं, बल्कि एक ऐसा तथ्य है जिसे जानना और जिसको शब्दों में ब्यान करना संभव नहीं।

हिन्दू धर्म का कोई निश्चित चिंतन नहीं है। उसमें एकेश्वरवाद, द्वैतवाद और बहूदेववाद की सभी धारणाएँ मिलती हैं, यहाँ तक कि स्पष्ट नास्तिकता और ईश्वर के इनकार का दृष्टिकोण भी हिन्दूमत में सम्मलित है। लेकिन समष्टीय रूप से हिन्दू धर्म में एक महान परमेश्वर की कल्पना प्रभावी रही है, यद्यपि ईश्वरत्व उसके लिए विशिष्ट नहीं समझा गया है और आकाश एवं धरती की अनगिनत चीज़ों को ईश्वर के ईश्वरत्व में साझीदार बनाया जाता रहा है। इस व्यवहार को हिन्दू धर्म में इतनी व्यापकता दी गई है कि अंततः ईश्वर और अन्य चीज़ों के अस्तित्व में कोई आधारभूत अंतर शेष नहीं रह पाया। – स्रष्टा और सृष्टि, ख़ुदा और बन्दे का वह शाश्वत एवं पतनहीन अंतर जो इस्लाम और यहूदियत में सर्वमान्य है – हिन्दु धर्म उसका इनकार करता है। कुछ सम्प्रदायों के विचार में वास्तविकता एक अपौरुषेय अस्तित्व है। ब्रह्माण्ड का हर कण और मानवता का हर व्यक्ति उसी अपौरुषेय अस्तित्व का सीमित प्रदर्शन है। आम हिन्दू भाई जिसको भगवान कहता है, वह भी उन लोगों के विचार में उस परिपूर्ण तथ्य का एक निश्चित प्रदर्शन है। मानव-विकास की सबसे ऊँची मंज़िल अबाध्य सत्य का ज्ञान और उसकी प्राप्ति है।

धर्मों के मध्य सच्चाई, जगत् और मानव के बारे में ये मतभेद आधारभूत और वास्तविक हैं। इन मतभेदों के प्रभाव उनकी पूरी व्यवस्था पर सम्पूर्णरूप से या उसके अंशों और भागों पर पृथक-पृथक पड़ते हैं। धर्मों की मिसाल विभिन्न

प्रकार के पेड़ों की-सी है। यद्यपि सभी पेड़ इस दृष्टि से एक हैं कि प्राय: हर पेड़ में जड़, तना, शाखाएँ, पत्ते, फूल और फल होते हैं। किन्तु इस बाह्य समानता के बावजूद वास्तव में हर पेड़ दूसरे पेड़ से भिन्न होता है। इस प्रकार बाह्य समानता के बावजूद हर धर्म सच्चाई के प्रति धारणा रखने, उससे सम्पर्क स्थापित करने के उपायों और मानवीय जीवन के उद्देश्य एवं लक्ष्य को प्राप्त करने के तरीक़ों में एक-दूसरे से भिन्न है।

उदाहरणत: इबादत और उपासना के तरीक़ों पर विचार कीजिए, जिनके द्वारा धर्मवाले अपने-अपने धर्म के उच्च तथ्यों से संपर्क स्थापित करते हैं। जिन धर्मों में सबसे बड़ी सच्चाई एक अपौरुषेय अस्तित्व है और मानव से उसका संबंध एक असीम सच्चाई और उसके सीमित प्रादुर्भाव का है, उनमें चिन्तन (Meditation) को आधारभूत महत्व प्राप्त है। इसके विपरीत जिन धर्मों में ईश्वर की कल्पना पौरुषिक है और मनुष्य से उसका संबंध स्वामी और दास का है, उनमें उपासना, जाप और प्रार्थना अत्यंत महत्वपूर्ण इबादतें हैं।

इसी प्रकार जिन धर्मों में आत्मा को एक भौतिक शरीर में बंदी समझा गया है और दोनों के बीच टकराव एवं संघर्ष को आधारभूत सच्चाई ठहराया गया है, उनमें त्याग, इन्द्रिय-दमन और तपस्या को आत्मविकास के लिए अनिवार्य ठहरा गया है। इसके विपरीत जिन धर्मों ने आत्मा और शरीर में सहयोग को महत्व दिया है और मानव-आत्मा का आदर्श पृथ्वी पर ईश्वर के साम्राज्य एवं प्रभुत्व की स्थापना ठहराया है, उन्होंने सांसारिक जीवन-सामग्री से लाभान्वित होने, ईश-जाप और उपासना और सामाजिक और सामूहिक सभी कामों में संकल्प एवं संतुलन की शिक्षा दी है।

धर्मों के बीच भतभेद धारणाओं, इबादतों और आत्मविकास के तरीक़ों तक सीमित नहीं है, बल्कि उनकी मूल्य प्रणाली और जीवन-व्यवस्था दोनों में विद्यमान है। एक धर्म में उदाहरणत: अहिंसा आधारभूत धारणा है, दूसरे धर्म में वह केवल एक मर्यादा है, एक धर्म के निकट नग्नता, त्याग, ब्रह्मचर्य और आत्मसंयम का आदर्श है, दूसरे धर्म के निकट एक अप्रिय और कुत्सित कर्म। एक धर्म के मतानुसार मनुष्य माता के पेट से कुलीन व नीच पैदा होता है और

मरते दम तक इसी स्थिति पर स्थिर रहता है, दूसरे धर्म के मतानुसार मनुष्य की हर संतान समान रूप से आदरणीय और प्रिय है चाहे वह जिस घर और ख़ानदान में पैदा हो। एक के निकट भेदभाव व अन्तर वास्तविक हैं और समानता अस्थायी। दूसरे की दृष्टि में समानता वास्तविक है और भेदभाव व अन्तर समाज की अपनी पैदा की हुई बुराई हैं।

सर्वधर्म एकम् का दृष्टिकोण

कुछ लोग इन मतभेदों को, जिनकी ओर मैंने संकेत किया है, वास्तविक नहीं समझते। वे इन्हें हमारे बाह्य अवलोकन एवं दृष्टि-दोष का परिणाम बताते हैं। मैं उन लोगों की निष्ठा पर सन्देह नहीं करता। लेकिन मैं उनके विचार से सहमत नहीं हूँ। धर्मों के बीच जिन बातों में वस्तुत: सहमति है, मैंने पिछले पन्नों में उनका वर्णन सविस्तार किया है। उनके अतिरिक्त और किसी भी विषय में मुझे सहमति नज़र नहीं आती। फिर मैं जिन बातों में सहमति पाता हूँ वे मेरी दृष्टि में प्रत्येक धर्म के महत्वपूर्ण और आधारभूत अंग हैं, जैसा कि मैंने बार-बार स्पष्ट किया है। इसी प्रकार जिन बातों में मुझे भतभेद मिलता है वे भी महत्वपूर्ण और आधारभूत हैं। धर्मों के मध्य सहमति भी वास्तविक है और मतभेद भी। न मतभेद उथली दृष्टि का परिणाम है और न सहमति सुधारणा का फल। मेरी दृष्टि में महत्वपूर्ण और महत्वहीन, मौलिक और अमौलिक का मापदंड वस्तुपरक होता है। हम हर धर्म की हर उस चीज़ को महत्वपूर्ण और आधारभूत कहने को तैयार हैं, जिसको उस धर्म के माननेवाले महत्वपूर्ण समझें और हर उस बात को महत्वहीन मानते हैं, जिसको उसके माननेवाले महत्वहीन कहते हैं।

डा. भगवानदास ने अपनी किताब "द एर्सेशियल यूनिटी ऑफ़ आल रिलीज़न्स" (The Essential Unity of all Religions) में यह दृष्टिकोण पेश किया है कि धर्म न केवल आधारभूत मूल्यों में सहमत हैं, बल्कि धारणा, उपासना (इबादत), नैतिकता और सामाजिक सिद्धांतों में भी उनके बीच मूल रूप से सहमति है। उनमें जो मतभेद हैं उनका संबंध महत्वहीन चीज़ों से है। उनका विचार है कि मानवता का एक आधारभूत धर्म है जो प्राचीन और सार्वकालिक है (और यह अंश सारे धर्मों में विद्यमान है। शेष अंग अस्थायी और

सामयिक हैं)। उनके विचार में सारे धर्मों को अपने महत्वहीन एवं सामयिक मतभेदों को भुलाकर उस उभयनिष्ठ प्राचीन और सर्वकालिक धर्म पर एकत्र हो जाना चाहिए। इसी संयुक्त आधार पर जीवन का पुनर्निर्माण होना चाहिए और इसी में मानव की मुक्ति है।

उस प्राचीन और शाश्वत धर्म का जो स्पष्टीकरण माननीय लेखक ने किया है उसका सार यह है कि वर्तमान जगत् वास्तव में एक महान अपौरुषिक अस्तित्व का प्रादुर्भाव है। समस्त वस्तुएँ और सारे मनुष्य उस अपौरुषिक और असीमित अस्तित्व के सीमित प्रकट रूप हैं। मनुष्य की संपूर्ण कोशिश एवं संघर्ष का अंतिम लक्ष्य अपने वैयक्तिक एंव आंशिक अस्तित्व को उस अवैयक्तिक और संपूर्ण अस्तित्व में विलय कर देना है और उससे मिलकर इस प्रकार असीमित हो जाना है, जिस प्रकार बूंद समुद्र में विलय होकर असीमित हो जाता है। इसी में मानव का कल्याण एवं मुक्ति है।

यह अद्वैतवाद एक दर्शन की हैसियत से क्या महत्व रखता है ? यह एक अलग प्रश्न है। इस प्रकार यह प्रश्न भी अलग है कि कुछ योगी और सूफ़ी इस दृष्टिकोण को अपनी आध्यात्मिक एवं रूहानी घटनाओं से कितना अनुकूल पाते हैं। मगर जहाँ तक ऐतिहासिक धर्म का संबंध है, उनमें से किसी धर्म की नींव इस अद्वैतवाद पर नहीं रखी गई है। जहाँ तक इस्लाम का संबंध है, उसमें ईश्वर की धारणा एक वैयक्तिक अस्तित्व की है और ईश्वर एवं मनुष्य में संबंध का प्रकार स्वामी और दास के मध्य वैयक्तिक संबंध का है। इस्लाम में मनुष्य की सर्वोच्च मंज़िल अपने आंशिक अस्तित्व को लीन करके ईश्वर के अस्तित्व में मिल जाना नहीं, वरन् उसके आदेश का पालन करना और निष्ठापूर्वक प्रसन्नता की तलाश के माध्यम से उसके साथ और निकट रहकर अपने वैयक्तिक अस्तित्व को पूर्ण करना है। डॉक्टर भगवान दास ने इस्लाम का अध्ययन करते समय मुस्लिम सूफ़िया के एक सीमित गिरोह को सामने रखा है। यदि वे पूरे इस्लामी तसव्वुफ़ ही का अध्ययन कर लेते तो अपने अद्वैतवाद को मुस्लिम सूफ़िया का दृष्टिकोण न ठहराते और यदि वे पवित्र क़ुरआन और पैग़म्बर की जीवनी का अध्ययन करते तो कदापि इस दृष्टिकोण को इस्लाम से संबद्ध नहीं करते।

डॉ. भगवान दास का अद्वैतवाद इस्लाम ही नहीं यहूदी धर्म और ईसाई धर्म पर भी चरितार्थ नहीं होता। कुछ ईसाई सूफ़ियों ने अपनी आध्यात्मिक घटनाओं का अर्थ ब्यान करने के लिए अवश्य ही अद्वैतवादी भाषा का प्रयोग किया है। लेकिन यह दृष्टिकोण ईसाई धर्म का अंश कभी नहीं रहा और उसे कभी लोकप्रियता प्राप्त नहीं हुई। भारतीय धर्मों पर भी यह दृष्टिकोण चरितार्थ नहीं होता। जैन मत और बौद्ध मत की विचारधारा निस्संदेह अद्वैतवादी नहीं है। प्रायः उपनिषदों की विचारधारा उसे अवश्य कहा जा सकता है। किन्तु यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि उपनिषदों का अद्वैतवाद हिन्दू योगियों के आध्यात्मिक अनुभवों का फल है, न कि हिन्दू धर्म की व्याख्या। वे विशिष्ट धारणाएँ और पूजा-पाठ के वे ख़ास तरीक़े और वे नैतिक मूल्य और सामाजिक व्यवस्था जिनसे ऐतिहासिक हिन्दू धर्म बना है, उनमें से किसी चीज़ का संबंध उपनिषदों के अद्वैतवाद से नहीं है। इस दृष्टिकोण ने न उन्हें जन्म दिया है और न उनकी संरचना में उसका कोई यत्न है। सर्वधर्म एकम् का दृष्टिकोण सूफ़ीमत और दर्शनशास्त्र की पैदावार है। सूफ़ी के 'क़ल्ब' (हृदय) पर एक विशेष चरण में जो घटनाएँ घटती हैं यह दृष्टिकोण उनका भाष्य है। जब सूफ़ी इस चरण से गुज़रकर आगे के चरण में पैर रखता है तो उसे सच्चाई, अद्वैतवादी नहीं, किसी और रंग में नज़र आती है। इस चरण पर स्रष्टा और सृष्टि का अंतर स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आता है और धर्म की वह व्याख्या जो नबियों (ईशदूतों) ने की है, सही दिखाई देती है। इस्लाम के विभिन्न बड़े-बड़े सूफ़ियों की दृष्टि में अद्वैतवाद हक़ीकत की सही तर्जुमानी नहीं है, बल्कि सूफ़ी की अपरिपक्वता का प्रमाण है। एक बीच के चरण को आध्यात्मिक यात्रा का अंतिम चरण समझ लेने की जो ग़लती कुछ मुस्लिम सूफ़ियों से हुई है, वैसी ही ग़लती उपनिषदों के योगियों ने भी की है।

जो लोग अद्वैतवाद की धारणाओं को धर्म का उभयनिष्ठ तत्व कहते हैं, वे योग और सूफ़ीवाद और धर्म के बीच जो आधारभूत अंतर है, उससे अनभिज्ञ हैं। प्रत्येक धर्म 'सत्य' के संबंध में एक विशिष्ट दृष्टिकोण, भलाई-बुराई का एक विशेष आदर्श व पैमाना और जीवन की संरचना का एक पृथक नक़्शा रखता है और अन्य दृष्टिकोणों, आदर्शों और नक़्शों को ग़लत या कम से कम अपूर्ण कहता है। यही चीज़ उसके पृथक-अस्तित्व और शेष रहने के लिए आधार

बनती है। सर्वधर्म एकम् के जोगीयाना व सूफ़ीयाना दृष्टिकोण किसी विशिष्ट सत्य के प्रति दृष्टिकोण, नैतिकता का आदर्श और जीवन-चित्र को नहीं रखते और न उनमें उन्हें पैदा करने की योग्यता होती है। वे एक स्वर में हर दृष्टिकोण को सही, हर आदर्श को परिशुद्ध और हर नक़्शे को सत्य ठहरा देते हैं और दूसरे स्वर में हर एक को त्रुटिपूर्ण, ग़लत और झूठा क़रार देते हैं। वास्तव में उनकी दृष्टि में सही और ग़लत, भलाई-बुराई और सत्य एवं झूठ के तमाम अंतरों की गुंजाइश नहीं होती। सर्वधर्म एकम् का दृष्टिकोण धर्मों के मध्य उभयनिष्ठ तत्वों की तलाश नहीं है, बल्कि सिरे से धर्म ही को मिथ्या ठहराना (Falsification) है।

धर्मों के बीच वैचारिक एकता की कोशिश का एक दूसरा प्रदर्शन एक यूरोपियन सूफ़ी स्वभाव विद्वान एफ़. शैवून की किताब "The Transcendental Unity of Religions" है। शैवून का विचार है कि सच्चाइयाँ दो प्रकार की होती हैं। अलौकिक और धार्मिक। अलौकिक सच्चाई एक है और धार्मिक सच्चाई बहुत-सी हैं। किन्तु ये समस्त धार्मिक सच्चाइयाँ उसी एक अलौकिक सच्चाई की विभिन्न शक्लें हैं। शैवून की अलौकिक सच्चाई डॉ. भगवान दास की अद्वैतवादी सच्चाई से भिन्न चीज़ नहीं है। शैवून को यह स्वीकार है कि अलौकिक सच्चाई धार्मिक सच्चाई से अलग एक चीज़ है। मगर उनको इस अन्तर का सही विवेक नहीं है। अगर यह अन्तर सही रूप में उनपर स्पष्ट होता तो वे धार्मिक सच्चाइयों को अलौकिक सच्चाई के भिन्न रूप और प्रादुर्भाव न ठहराते। आप अलौकिक सच्चाई कहें या अद्वैतवादी सच्चाई का नाम दें। दोनों की नीव सूफ़ीवाद के अवलोकनों पर है, जिसका कोई संबंध ऐतिहासिक धर्म से नहीं है।

धर्म और राष्ट्रीय एकता

धर्मों के बीच सैद्धांतिक एकत्व तलाश करने की दूसरी कोशिशों का उल्लेख बेफ़ायदा है और इस संक्षिप्त लेख में इसकी गुंजाइश भी नहीं है। किन्तु प्रश्न यह है कि इस कोशिश की आवश्यकता क्या है ? क्या उन सामान्य मानवीय मूल्यों में सहमति और एकता जिनका उल्लेख मैंने विस्तार से लेख के आरंभ में किया है, विविध धर्मों के लोगों को एक-दूसरे से निकट लाने, एक इनसानी रिश्ते

में जोड़ने, अमन और शांति से रहने, निष्ठा और प्रेम से पेश आने, न्याय, दया और त्याग का व्यवहार करने, एक-दूसरे की धार्मिक परम्पराओं, पवित्र व्यक्तित्वों और धार्मिक प्रतीकों एवं निशानियों का सम्मान करने और मिल-जुलकर एक शान्तिपूर्ण और सभ्य-समाज के निर्माण के लिए काफ़ी नहीं है ? हमारा विश्वास है कि ये उभयनिष्ठ मानवीय मूल्य एक अच्छे मनुष्य, एक उत्तरदायी नागरिक और एक शांतिप्रिय समाज की वास्तविक ज़ामिन है। शर्त यह है कि प्रत्येक धर्म के लोग उन मूल्यों को संच्चाई के साथ अपना लें – और यह बड़ी महत्वपूर्ण शर्त है – धार्मिक लोग यदि उन मूल्यों को जो उनके अपने धर्म की वास्तविक शिक्षाएँ हैं, अपने जीवन में वह स्थान दें जो उनके धर्म ने उन्हें देना चाहा है तो हमारे समाज में शांति-ही-शांति होगी।

भारत में राष्ट्रीय सौहार्द और एकता एक समस्या बन गई है। बहुत-से लोग जातियों और भाषाओं की तरह धर्मों के बहुतात को भी एकता एवं सौहार्द के मार्ग में रुकावट समझने लगे हैं। कुछ लोग इस संकट का हल सर्वधर्म एकम् की धारणा में तलाश करते हैं लेकिन यह नहीं जानते कि सर्वधर्म एकम् का दृष्टिकोण किसी धर्म का बदल नहीं बन सकता। जिस प्रकार अधिक भाषाओं का हल यह नहीं है कि हम उनके बीच एक "उभयनिष्ठ भाषा" तलाश करें या विभिन्न भाषाओं से कुछ अंश लेकर एक मिश्रित भाषा बनाएँ, उसी प्रकार धर्मों के अधिक होने का हल यह नहीं है कि हम उनमें से एक "उभयनिष्ठ धर्म" निकालने का प्रयास करें या हर धर्म से एक-एक अंश लेकर एक नया "ईश्वरीय धर्म" (दीने इलाही) तैयार करें।

कुछ उन्नतिशील वर्ग धर्मों की अधिकता से आगे बढ़कर धर्म की आत्मा को ही मतभेद एवं फूट का कारण बताते हैं। उनकी दृष्टि में ख़ुदा या भगवान का नाम लेना ही फूट और उपद्रव को आमंत्रित करना है। उन लोगों की कोई रुचि धार्मिक झगड़ों को सुलझाने में नहीं है। ये अपना काम प्रत्येक धर्म को जड़-बुनियाद से उखाड़ना समझते हैं। अतएव, उनके बहुत-से लोग और जत्थे धार्मिक झगड़ों को हवा देते हैं और साम्प्रदायिक उपद्रवों में सक्रिय नज़र आते हैं, ताकि वे इस प्रकार धर्म को बदनाम कर सकें और धार्मिक शक्तियों को कमज़ोर कर सकें। यह समुदाय भारत को उसकी हज़ारों साल की प्राचीन धार्मिक

परम्पराओं से काटकर अधार्मिकता के पथ पर चलाना चाहता है। उसे यह एहसास नहीं है कि धर्म की जड़ें मानव-प्रकृति की गहराइयों में इस प्रकार पेवस्त हैं कि किसी के उखाड़ने से उखड़नेवाली नहीं हैं। आज सारे विश्व में धर्म को जीवित करने की जो कोशिश हो रही है और जिसके प्रभाव से उनकी अपनी सुर्ख़ ज़न्नत भी सुरक्षित नहीं है, उससे भी ये लोग शिक्षा लेने के लिए तैयार नहीं हैं।

न धर्म ही सौहार्द और एकता के मार्ग में रुकावट है और न धर्म की बहुतात। जो चीज़ वास्तव में रुकावट है, वह अधार्मिकता और धर्म से दुश्मनी के वे प्रयास हैं, जो धर्म के नाम पर बड़ी निर्लज्जता के साथ आजकल किए जा रहे हैं। धर्म के नाम पर जो झगड़े होते हैं उनके पीछे कोई धार्मिक भावना क्रियाशील नहीं होती, बल्कि कुछ तुच्छ, वैयक्तिक और सामुदायिक उद्देश्य और कुछ विशुद्ध भौतिक और राजनैतिक लाभ-प्राप्त करना होते हैं। झगड़ों का आरंभ बाह्यत: किसी साधारण घटना से होता है, जिसे यदि लोग अपने-अपने धर्म की वास्तविक शिक्षाओं के प्रकाश में सुलझाना चाहें तो ये छोटी-छोटी एवं साधारण घटनाएँ बढ़कर उपद्रव के रूप न अपनाने पाएँ। उन चिनगारियों को जो चीज़ शोला बना देती है और जिसकी आग बहुत-सी मानव-बस्तियों और बहुमूल्य इनसानी जानों को अपनी लपेट में ले लेती है, वह अधार्मिकता और धार्मिक शत्रुता की वह योजनाबद्ध कोशिशें हैं जो धर्म की आड़ में की जाती हैं और जिनका एक मात्र उत्प्रेरक धन और सत्ता से संबंधित स्वार्थ होता है। ये कोशिशें कदापि किसी धर्म की इज़्ज़त का कारण नहीं, बल्कि उलटी ज़िल्लत और अपमान का कारण होती हैं।

धर्मवालों के बीच असहमति के कारण

धर्म के माननेवालों के बीच असहमति और टकराव के कुछ अन्य कारण हैं:-

पहला और मौलिक कारण यह है कि हममें से कुछ लोग और कुछ जत्थे यह मानने के लिए तैयार नहीं हैं कि भारत केवल एक धर्म के मानने वालों का नहीं, बल्कि उन सारे धर्मवालों का देश है जो यहाँ पर सैकड़ों और हज़ारों

साल से रहते और बसते चले आए हैं। ये लोग इस देश को अपनी व्यक्तिगत मीरास समझते हैं और दूसरों को विदेशी कहते हैं। उन्होंने भारतीय होने की जो शर्तें रखी हैं, उनका सार यह है कि जब तक दूसरे लोग उनकी धार्मिक परम्पराओं को अपनी परम्परा और उनकी धार्मिक विभूतियों को अपनी विभूतियाँ न स्वीकार कर लें अर्थात् अन्य शब्दों में – जब तक उनके धर्म के एक-एक अंश पर ईमान न लाएँ उस समय तक "भारतीय" कहलाने के पात्र नहीं हैं। उनके विचार में भारतीय होने के लिए इस देश के साथ वफ़ादारी और प्रेम काफ़ी नहीं है। स्पष्ट है कि इस मानसिकता की मौजूदगी में देश में कभी अमन एवं शांति का वातावरण स्थापित नहीं हो सकता।

दूसरा कारण यह है कि कुछ लोग ग़लती से यह सोचने लगे हैं कि उनका अपने धर्म को सच्चा समझना, अपने रीति-रिवाजों एवं नियमों को प्रतिष्ठित समझना और अपनी परम्पराओं और बुज़ुर्गों का सम्मान करना इस बात की अपेक्षा करता है कि वे अपने धर्म को दूसरों पर लाद दें और अपनी पद्धतियों को दूसरों से बलपूर्वक मनवाएँ और यह यदि संभव न हो तो उनकी धारणाओं पर फब्ती कसें और व्यंग करें। उनके उपासनागृहों का अनादर करें और उनकी बुज़ुर्ग हस्तियों का मज़ाक़ उड़ाएँ। यद्यपि इन दोनों बातों में कोई जोड़ नहीं है। मैं यदि किसी धारणा को सही और दूसरे को ग़लत समझता हूँ तो इससे मुझे कब यह अधिकार प्राप्त होता है कि मैं दूसरे की धारणा व धर्म का मज़ाक़ उड़ाऊँ। यदि मैं अपने रीति-रिवाजों को बेहतर और दूसरे रीति-रिवाजों को अच्छा नहीं समझता हूँ तो इससे कब यह औचित्य बनता है कि मैं अपने तरीक़े को दूसरों पर ज़बरदस्ती थोपूँ। जो व्यक्ति या गिरोह भी ऐसा करेगा वह मानवता और लोकतंत्र का ही नहीं, स्वयं अपने धर्म-मूल्यों का गला घोटेंगा।

तीसरा कारण यह है कि हममें से प्राय: अपने लिए जो अधिकार चाहते हैं वे अधिकार दूसरों को देने के लिए तैयार नहीं होते। उदाहरणत: हम यह चाहते हैं कि हमारी जान व माल सुरक्षित हो, हमारी मान-मर्यादा को आँच न आए, हमें शिक्षा एवं उन्नति के पूरे अवसर प्राप्त हों, पदों और नौकरियों में हमारे अपने लोग हों, हमें अपने धर्म के प्रचार-प्रसार की पूरी स्वतंत्रता हो, अपने बच्चों को अपने धर्म की शिक्षा देने का अवसर प्राप्त हो, अपनी धार्मिक और सांस्कृतिक

संस्थओं को स्थापित करने और संचालित करने का अधिकार और अपनी भाषा को पढ़ने-पढ़ाने और विकसित करने के लिए समस्त सुविधाएँ प्राप्त हों। किन्तु हम यही अधिकार दूसरे धर्म के माननेवालों को देने के लिए तैयार नहीं होते। हम स्वयं अपने अधिकार से अधिक प्राप्त करना चाहते हैं, लेकिन दूसरों को उनका वैध अधिकार भी देना पसन्द नहीं करते और हम कदापि नहीं सोचते कि हमारा यह आचरण न्याय एवं इंसाफ़ ही के ख़िलाफ़ नहीं, बल्कि स्वयं अपने धर्म की सर्वोत्तम परम्पराओं और सर्वोच्च मूल्यों के विरुद्ध है। इससे हमारे धर्म की इज़्ज़त नहीं बढ़ती, बल्कि पूरी दुनिया में रुसवाई होती है।

मेरे विचार में धार्मिक लोगों में असहमति एवं शत्रुता के यही तीन बड़े कारण हैं। उनका इलाज मेरे निकट यह है कि –

(1) हम भारत को हिन्दुओं, मुसलमानों, सिखों, ईसाइयों, जैनियों, बौद्धों, पारसियों और उन समस्त सम्प्रदायों का देश समझें जो कई पीढ़ियों से इसमें बसते और रहते चले आए हैं। हम सच्चे दिल से मानें कि हमारे देश में हर धर्म और हर सम्प्रदाय को समान अधिकार प्राप्त हों।

(2) अपने धर्म, अपने रीति-रिवाज, अपने मूल्यों, और अपनी परम्पराओं को ज़बरदस्ती दूसरों पर न थोपें। दूसरों के उपासनागृहों, धार्मिक विभूतियों, किताबों, परम्पराओं, उत्सवों और पद्धतियों का सम्मान करें।

दूसरों के धर्म, धार्मिक बातों और विभूतियों के सम्मान करने का अर्थ यह कदापि नहीं होता कि हम अपने धर्म की बातों में संदेह करें। न इससे यह परिणाम निकलता है कि हम प्रत्येक धर्म को समान मानने लगें और किसी को किसी के मुक़ाबले में प्राथमिकता न दें या किसी बात को सही और किसी को ग़लत न ठहराएँ। प्रत्येक मानव को अपनी बातें सही और दूसरे की बातें ग़लत समझने का अधिकार प्राप्त है। किन्तु किसी को यह अधिकार प्राप्त नहीं है कि वह दूसरों की चीज़ों की बेइज़्ज़ती और अनादर करे।

(3) हमें हर मनुष्य का यह हक़ मानना चाहिए कि वह किसी धर्म में विश्वास रखने या एक को छोड़कर दूसरा धर्म अपनाने में स्वतंत्र और आज़ाद है।

उसको अपने विचार एवं दृष्टिकोण को सामान्य नैतिक नियमों और लोकतांत्रिक मर्यादाओं में रहते हुए प्रकट करने और इस उद्देश्य के लिए प्रचार-प्रसार के सारे माध्यम – प्रेस एवं समाचारपत्र-पत्रिकाएँ – प्रयोग करने, किताबें प्रकाशित करने और स्कूल या मदरसे स्थापित करने का समान अधिकार पहुँचता है।

(4) अंतिम बात यह कि हम अपने धर्म के आम मानवीय मूल्यों को न भूलें। उन्हें अपने धर्म का मूल एवं महत्वपूर्ण भाग समझें। धर्म और समुदाय का अंतर किए बिना उनको हर मनुष्य के साथ उपयोग करना सीखें। प्रत्येक मनुष्य की सेवा और उससे प्रेम करने को अपना कर्तव्य जानें और किसी भी मनुष्य के साथ अत्याचार व उत्पीड़न को महापाप समझें। यह बात अच्छी तरह मन में बिठा लें कि किसी एक मनुष्य को नाहक़ सताकर, उसको वैध अधिकारों से वंचित करके, उसकी जान, माल, इज़्ज़त व आबरू को नुक़सान पहुँचाकर हम न अपनी सेवा करेंगे, न अपने धर्म की, और न अपने देश की। हक़ एवं इंसाफ़ के ख़िलाफ़ हमारा हर क़दम मानवता, नैतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक हर दृष्टि से ग़लत है और हमारी मुक्ति के मार्ग में पहाड़ जैसी रुकावट है।

मुझे विश्वास है कि यदि हर धर्म के लोग उन बातों को जो उनके अपने धर्म की सच्ची शिक्षाएँ हैं सच्चे दिल से अपना लें, उनपर स्वयं चलें और अपने भाइयों को चलाएँ तो हम एक अच्छा, मज़बूत, शांतिमय और सभ्य समाज का निर्माण करने में अवश्य सफल होंगे। इन बातों के अतिरिक्त किसी और चीज़ की आवश्यकता भी नहीं होगी।

इस्लाम और राष्ट्रीय एकता

जहाँ तक इस्लाम का संबंध है वह राष्ट्रीय सौहार्द, सहमति और एकता की इन सारी बातों का पूरा समर्थन करता है। इस्लामी दृष्टिकोण से सारे धर्म समान रूप से सम्मान के पात्र हैं। हर मुसलमान का कर्तव्य है कि वह अन्य धर्मों के उपासनागृहों, व्यक्तित्वों, किताबों, रीति-रिवाजों का सम्मान करे। किसी

'इष्ट' (पूज्य) को क्षति पहुँचाना, किसी धार्मिक विभूति को बुरा कहना, किसी धार्मिक किताब का अनादर करना इस्लाम की दृष्टि में महा पाप है। यह काम कोई मुसलमान आज करे या किसी मुसलमान ने इतिहास में कभी भी किया हो, ग़लत है। जो काम इस्लाम के सिद्धांतों के विरुद्ध है उसका इस्लाम के नाम पर करना इस्लाम की कोई सेवा नहीं, बल्कि उलटी उसकी रुसवाई एवं उसका अपमान करना है। इस संबंध में क़ुरआन एवं हदीस ने स्पष्ट आदेश दिया है और इस्लामी क़ानून में इससे संबंधित स्पष्ट धाराएँ विद्यमान हैं। किसी मुस्लिम राजा के कर्म से, किसी क़ाज़ी (न्यायधीश) के फ़ैसले से, किसी शासन के आदेश से या किसी मुफ़्ती के फ़तवे से इस सिद्धांत में कोई परिवर्तन होनेवाला नहीं है।

इस्लाम हर मनुष्य को अधिकार एवं चुनाव की स्वतंत्रता देता है। प्रत्येक धर्म के लोगों को अपने धर्म पर क़ायम रहने, उसका प्रचार करने, उसके लिए स्कूल खोलने, प्रेस और समाचार-पत्र-पत्रिकाओं के प्रयोग करने, किताबें और पत्रिकाओं को प्रकाशित करने का अधिकारी समझता है। धर्म परिवर्तन करने पर इस्लाम किसी को विवश करना अवैध ठहराता है। पवित्र क़ुरआन का आदेश है– "ला इकरा-ह फ़िद्दीन" (2:256) अर्थात् धर्म के विषय में कोई ज़बरदस्ती वैध नहीं है। इस्लाम धर्मों के रीति-रिवाजों एवं उत्सवों, संगठनों और पर्सनल लॉ में हस्तक्षेप करने को सही नहीं समझता, मुसलमान शासकों ने इस्लामी शिक्षाओं की अपेक्षा समझकर अपने अधीन जातियों को उनके धार्मिक मामलों में पूरी स्वतंत्रता दी है। उनके पर्सनल लॉ की रक्षा की है, उसको लागू करने के लिए उनके अपने आदमी नियुक्त किए हैं और उनके मुक़द्दमों का फ़ैसला करने के लिए उनके अपने जज (न्यायधीश) नियुक्त किए हैं। यही कार्यशैली इस्लामी शिक्षाओं और उसकी सही परम्पराओं के अनुरूप है। उसके ख़िलाफ़ अगर कुछ भी कहीं मिलता है तो वह ग़ैर-इस्लामी और ग़लत है।

इस्लाम हर मनुष्य को एक ही माँ-बाप की संतान समझता है। समस्त मनुष्यों को भाई-भाई और सबको बराबर ठहराता है। यह बात केवल मुसलमानों तक सीमित नहीं है, बल्कि प्रत्येक धर्म, प्रत्येक समुदाय, प्रत्येक देश और प्रत्येक वर्ग का मानव हर दूसरे मानव का भाई और उसके बराबर है। मनुष्य होने की हैसियत से सबकी जान, सबकी संपत्ति, सबकी इज़्ज़त, सबका पंथ, सबका

धर्म, समान रूप से आदर योग्य है। इस्लाम हर अत्याचार को अत्याचार ही कहता है चाहे वह किसी के विरुद्ध हो या किसी भी भावना के साथ किया जाए।

इस्लाम सम्पूर्ण मानवता को "ईश्वर का परिवार" (ख़ुदा का कुम्बा) कहता है और हर मनुष्य की सेवा को ईश्वर की उपासना ठहराता है, चाहे वह मुस्लिम हो या ग़ैर-मुस्लिम। अपने पड़ोस, अपने मुहल्ले, अपने शहर और अपने देश के लोगों का हक़ दूसरों के मुक़ाबले में अधिक बताता है। त्याग व क़ुरबानी, उपकार और सद्व्यवहार चाहे वह जिस मानव के लिए हो, इस्लाम की दृष्टि में बहुत-सी इबादतों से बढ़कर है और ख़ुदा से प्रेम और उसका सामीप्य प्राप्त करने का बहुत बड़ा साधन है।

भाइयो !

उचित ज्ञात होता है कि इन बातों के समर्थन में पवित्र क़ुरआन और पैग़म्बर के कथनों (हदीसों) से कुछ वाक्य उद्धृत करूँ और इसी पर अपनी बात ख़त्म करूँ–

- लोगो ! परस्पर एक-दूसरे के प्रति कुधारणा न रखो, एक-दूसरे की टोह में न रहो, एक के विरुद्ध दूसरे को न उकसाओ। आपस की ईर्ष्या एवं द्वेष से बचो, एक-दूसरे की काट न करो। अल्लाह के बंदे और आपस में भाई-भाई बनकर रहो। (हदीस)
- वह व्यक्ति मुस्लिम नहीं जिसका पड़ोसी उसके अत्याचार एवं उत्पीड़न से सुरक्षित न हो।" (हदीस)
- किसी को अत्याचारी एवं अन्यायी जानते हुए उसका साथ न दो। (हदीस)
- तुम्हारी मित्रता और शत्रुता ख़ुदा के लिए होनी चाहिए। (हदीस)
- अनुचित बात में अपनी जाति का समर्थन करना ऐसा है जैसे तुम्हारा ऊँट कुवें में गिरता हो तो तुम भी उसकी पूँछ पकड़कर उसके साथ जा गिरो। (हदीस)

- किसी जाति की शत्रुता तुम्हें इस बात पर न उभारे कि तुम उसके साथ अन्याय करो। (क़ुरआन)
- न्याय करो कि यही बात धर्मपरायणता से अधिक निकट है। (क़ुरआन)
- धर्म के संबंध में किसी प्रकार की ज़बरदस्ती वैध नहीं है। (क़ुरआन)
- अल्लाह के अलावा जिन पूज्यों को लोग पुकारते हैं उन्हें कदापि बुरा-भला न कहो। (क़ुरआन)
- दूसरों के लिए वही पसन्द करो जो तुम अपने लिए पसन्द करते हो। (हदीस)
- मैं तुम्हें अल्लाह की अवज्ञा से बचने, सच बोलने, वचन को पूरा करने, अमानत को ठीक-ठीक पहुँचाने, बेईमानी न करने, अनाथ पर दया करने, पड़ोसी के हक़ों की रक्षा करने, क्रोध को दबाने, लोगों से नर्म शैली में बात करने और उनकी कुशलता हेतु दुआ करने की वसीयत करता हूँ। (हदीस)
- तुम वह अच्छा समुदाय (उम्मत) हो जिसे संसारवालों की भलाई के लिए उठाया गया है। तुम्हारा काम भलाई का आदेश देना और बुराई से रोकना है। (क़ुरआन)
- नेकी और परहेज़गारी के कामों में साथ दो और बुराई और अत्याचार के कामों में सहयोग न करो। (क़ुरआन)